सप्तदश खण्ड

श्रीरामकृष्ण
काप्तेन, नरेन्द्रादि भक्तों के संग
दक्षिणेश्वर में

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर के गले के असुख का सूत्रपात)

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में काली-मन्दिर में उसी पूर्वपरिचित कमरे में विश्राम कर रहे हैं। आज शनिवार, 13 जून, 1885। ज्येष्ठ शुक्ला प्रतिपदा, ज्येष्ठ मास की संक्रान्ति। समय तीन का। ठाकुर आहार के पश्चात् छोटी खाट पर थोड़ा विश्राम कर रहे हैं।

पण्डित जी फर्श पर चटाई पर बैठे हुए हैं। एक शोकातुरा ब्राह्मणी कमरे के उत्तर के दरवाजे के पास खड़ी हुई है। किशोरी भी हैं। मास्टर ने आकर प्रणाम किया। संग में द्विज इत्यादि हैं। अखिलबाबू के पड़ोसी भी बैठे हैं। उनके संग में एक आसामी लड़का है।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कुछ अस्वस्थ हैं। गले में गुठली होने से सर्दी का भाव है। गले के रोग का यही प्रथम सूत्रपात है।

सख्त गर्मी पड़ने के कारण मास्टर का भी शरीर अस्वस्थ है। ठाकुर के सर्वदा दर्शन करने के लिए दक्षिणेश्वर आ नहीं सकते।

श्रीरामकृष्ण— अरे, यह तो तुम आ गए! सुन्दर वेला है। तुम कैसे हो?

मास्टर— जी, पहले से कुछ अच्छा हूँ।

श्रीरामकृष्ण— बड़ी गर्मी पड़ रही है। थोड़ी-थोड़ी बरफ खाइयो। मुझे भी

भाई सख्त गर्मी पड़ने से कष्ट हो रहा है। गर्मी में कुल्फी, बरफ— ये सब अधिक खाए गए हैं। तभी गले में गुठली हो गई है। बलगम में ऐसी गन्दी गन्ध नहीं देखी।

''माँ से कहा था, माँ! ठीक कर दो। फिर कुल्फी नहीं खाऊँगा।

''उसके पश्चात् फिर और कहा था, बरफ नहीं खाऊँगा।''

(श्रीरामकृष्ण और सत्य वचन— उनकी ज्ञानी और भक्त की अवस्था)

''माँ से जब कह दिया है 'खाऊँगा नहीं' और खाना होगा भी नहीं। किन्तु फिर भी हठात् ऐसी भूल हो जाती है। कहा था, रविवार को माछ नहीं खाऊँगा। अब एक दिन भूल से खा ली थी।

''किन्तु जानबूझ कर नहीं होने वाला। उस दिन गाड़ू लेकर किसी को झाऊतले की ओर जाने को कह दिया था। अब वह बाहर गया था, तभी कोई और ले आया था। मैंने बाह्य करके आकर देखा कि कोई और गाड़ू लेकर खड़ा है। उस गाड़ू का जल मैं ले नहीं सका। क्या करूँ? मिट्टी लिए खड़ा रहा, जब तक कि उसने ही जल लाकर नहीं दिया।

''माँ के पादपद्मों में फूल देकर जब सब त्याग करने लगा था, तब कहने लगा था, 'माँ! यह लो अपनी शुचि, यह लो अपनी अशुचि; यह लो अपना धर्म, यह लो अपना अधर्म; यह लो अपना पाप, यह लो अपना पुण्य; यह लो अपना भला; यह लो अपना मन्दा; मुझे शुद्धा भक्ति दो।' किन्तु 'यह लो अपना सत्य, यह लो अपना मिथ्या— यह बात नहीं कह सका था'।''

कोई भक्त बरफ लाए हैं। ठाकुर पुनः पुनः मास्टर से पूछ रहे हैं,
''क्यों भई, खा लूँ क्या?''

मास्टर विनीत भाव से कहते हैं,
''जी, किन्तु माँ के साथ परामर्श बिना किए ना खाएँ।''

ठाकुर ने फिर बरफ नहीं खाई।

श्रीरामकृष्ण— शुचि, अशुचि— यह तो भक्त के लिए है। ज्ञानी के लिए नहीं। विजय की सास ने कहा, 'कहाँ, मेरा क्या हुआ है? अभी तक भी सब का खा नहीं सकती!' मैंने कहा था, सब का खाने से ही क्या ज्ञान हो जाता है? कुत्ता जो-सो खा लेता है, इसी कारण क्या कुत्ता ज्ञानी है?

(मास्टर के प्रति)— मैं पाँच (कई) व्यंजनों के साथ क्यों खाता हूँ? कहीं पीछे एकघेये (कट्टर) हो जाने पर इन्हें (भक्तों को) न छोड़ना पड़े।

''केशवसेन से कहा था, 'और भी आगे बढ़कर बातें करने से तुम्हारा दल-वल नहीं रहेगा!'

''ज्ञानी की अवस्था में दल-वल है मिथ्या— स्वप्नवत्...।

''माछ छोड़ दी। पहले-पहले कष्ट हुआ करता था, फिर उतना कष्ट नहीं होता था। पक्षी का वासा (घोंसला) यदि कोई जला देता है, तो वह उड़ता-उड़ता फिरता रहता है, आकाश को आश्रय करके। देह, जगत यदि ठीक-ठीक मिथ्या बोध हो जाए तो फिर आत्मा समाधिस्थ हो जाती है।

''पहले वही ज्ञानी की अवस्था थी। लोग अच्छे नहीं लगते थे। हाटखोला में एक ज्ञानी है, या एक भक्त है, यही सुना था। और कुछ दिन पश्चात् सुना कि वह मर गया है! जभी फिर लोग अच्छे नहीं लगते थे। उसके पश्चात् उन्होंने (माँ ने) मन को नीचे उतारा, भक्ति-भक्त पर मन रख दिया।''

मास्टर अवाक्! ठाकुर की अवस्था-परिवर्तन का विषय सुन रहे हैं। ईश्वर मनुष्य होकर क्यों अवतार होते हैं, ठाकुर अब यही बतला रहे हैं।

(अवतार या नर-लीला का गुह्य अर्थ— द्विज और पूर्व संस्कार)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— मनुष्य-लीला क्यों, जानते हो? इसके भीतर उनकी कथा (बातें) सुनाई देती है। इसके भीतर उनका विलास है, इसके भीतर वे रसास्वादन करते हैं।

''और सब भक्तों के भीतर उनका ही थोड़ा-थोड़ा प्रकाश है! जैसे

वस्तु बहुत चूसते-चूसते थोड़ा रस, फूल चूसते-चूसते थोड़ा मधु। *(मास्टर के प्रति)* तुम इसे समझे हो ?''

मास्टर— जी हाँ, खूब समझ गया हूँ।

ठाकुर द्विज के साथ बातें करते हैं। द्विज की वयस् 15/16, बाप ने दूसरा विवाह किया है। द्विज प्राय: मास्टर के संग आते हैं। ठाकुर उन्हें स्नेह करते हैं। द्विज कह रहे थे, पिता उनको दक्षिणेश्वर नहीं आने देते।

श्रीरामकृष्ण *(द्विज के प्रति)*— तेरे भाई भी क्या मेरी अवज्ञा करते हैं ?

द्विज चुप हैं।

मास्टर— संसार में और दो-चार ठोकरें खा लेने पर जिनमें जो भी एक-आध ज़रा-सी अवज्ञा है, चली जाएगी।

श्रीरामकृष्ण— विमाता है, चोट (blow) तो खा रहे हैं।

सब चुप हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— इसको (द्विज को) पूर्ण के संग मिलवा देना।

मास्टर— जो आज्ञा। *(द्विज के प्रति)* पेनेटी में जाना।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, यही तो सबको कहता हूँ— इसको भेज दियो, उसको भेज दियो। *(मास्टर के प्रति)* तुम नहीं जाओगे ?

ठाकुर पेनेटी के महोत्सव में जाएँगे। जभी भक्तों को वहाँ पर जाने को कह रहे हैं।

मास्टर— जी, इच्छा है।

श्रीरामकृष्ण— बड़ी नौका होगी, टलटल नहीं करेगी। गिरीश घोष नहीं जाएगा ?

(‘हाँ’, ‘ना’— ‘everlasting yea, everlasting nay’)

ठाकुर द्विज को एक दृष्टि से देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, इतने छोकरे हैं, यही फिर क्यों आता है? तुम बताओ, पहले का अवश्य कुछ था!

मास्टर— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— संस्कार। पिछले जन्म में कर्म किया हुआ है। अन्तिम जन्म में सरल होता है, अन्तिम जन्म में पागलपन (अत्यन्त आनन्द से मतवाले) का भाव रहता है।

“किन्तु पता है, क्या है?— उनकी इच्छा। उनकी ‘हाँ’ से जगत का सब हो रहा है; उनकी ‘ना’ से होना बन्द हो जाता है।

“मनुष्य को आशीर्वाद क्यों नहीं करना चाहिए?

“मनुष्य की इच्छा से कुछ नहीं होता, उनकी ही इच्छा से होता है।

“उस दिन काप्तेन के वहाँ गया था। देखा, सड़क पर लड़के जा रहे हैं। वे और प्रकार के थे। एक लड़का देखा, उन्नीस-बीस वर्ष आयु, टेढ़ी माँग, सीटी बजाता जा रहा है। कोई यह बोलता जा रहा है— ‘नगेन्द्र! क्षीरोद!’

“किसी को देखा घोर तमो में— बंसी बजा रहा है— उससे ही थोड़ा अहंकार हो गया है। *(द्विज के प्रति)* जिसको ज्ञान हो गया है, उसे निन्दा का क्या भय? उसकी कूटस्थ बुद्धि— लुहार की निहाई (जिस लोहे पर धातु पीटते हैं), उसके ऊपर कितने हथौड़ों की चोटें पड़ती हैं, किसी से भी कुछ नहीं होता।

“मैंने (अमुक के) बाप को देखा था, सड़क पर जा रहा था।”

मास्टर— व्यक्ति तो बड़ा ही सरल है।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु आँखें लाल हैं।

(काप्तेन का चरित्र और श्रीरामकृष्ण— पुरुष-प्रकृति-योग)

ठाकुर काप्तेन के घर गए थे— उसी की बातें करते हैं। जितने लड़के ठाकुर के पास आते हैं, काप्तेन ने उनकी निन्दा की थी। हाजरा महाशय से शायद उनकी निन्दा सुनी थी।

श्रीरामकृष्ण— काप्तेन के साथ बातें हुई थीं। मैंने कहा, पुरुष और प्रकृति को छोड़ और कुछ नहीं है। नारद ने कहा था, हे राम, जितने पुरुष देखते हो, सब तुम्हारा अंश हैं; और जितनी स्त्रियाँ देखते हो सब सीता का अंश हैं।

''काप्तेन बहुत खुश हुआ। कहने लगा, 'आप को ही ठीक (यथार्थ) बोध हुआ है, सब पुरुष राम के अंश से राम हैं, सब स्त्रियाँ सीता के अंश से सीता हैं।'

''यह बात अभी-अभी कही और फिर झट बाद ही लड़कों की निन्दा आरम्भ कर दी। कहा, 'वे अंग्रेज़ी पढ़ते हैं— जो-सो खाते हैं, वे तुम्हारे पास सर्वदा आते हैं— यह अच्छा नहीं। उससे तुम्हारी हानि हो सकती है। हाजरा तो एक विशेष व्यक्ति है, अच्छा आदमी है। उन लड़कों को इतना न आने दें।' पहले तो कहा, आते हैं तो क्या करूँ?

''फिर मैंने उसको खूब रौंदा (सुनाया)। उसकी लड़की हँसने लगी। कहा, जिस व्यक्ति की विषयबुद्धि है, वह व्यक्ति ईश्वर से बहुत दूर है। विषयबुद्धि यदि न रहे, तो उस व्यक्ति के हाथ के भीतर वे (ईश्वर) होते हैं— अति निकट। काप्तेन ने राखाल की बात पर कहा कि वह सब के घर खा लेता है। लगता है हाजरा से सुना है। तब कहा, व्यक्ति हजार तप-जप करे, यदि विषयबुद्धि रहती है तो फिर कुछ भी नहीं होगा। और शूकर (सूअर) का माँस खाकर भी यदि ईश्वर में मन रहे तो वह व्यक्ति धन्य है। उसे धीरे-धीरे ईश्वर-लाभ होगा ही। हाजरा इतना जप-तप करता है किन्तु उसमें भी दलाली करे, इसी चेष्टा में रहता है।

''तब काप्तेन बोला— हाँ, तब वह बात तो ठीक है। उसके बाद मैंने कहा, अभी तो तुमने कहा है कि सब पुरुष राम के अंश से राम हैं, सब स्त्रियाँ सीता के अंश से सीता हैं, और फिर अभी ऐसी बात कहते हो!

''काप्तेन बोला— यह तो है, किन्तु तुम सब को तो प्यार नहीं करते!

''मैंने कहा, 'आपो नारायण:' सब ही जल है, किन्तु कोई तो जल पिया जाता है, किसी से नहाया जाता है, किसी जल से शौच किया जाता है। यही जो तुम्हारी स्त्री और लड़की बैठी हुई हैं, मैं देख रहा हूँ साक्षात् आनन्दमयी! काप्तेन तब कहने लगा, 'हाँ, हाँ, वह ठीक है! तब फिर-फिर मेरे पाँव पकड़ने लगा।''

यह कहकर ठाकुर हँसने लगे। अब ठाकुर, काप्तेन में कितने गुण हैं, यह बता रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— काप्तेन में अनेक गुण हैं। रोज नित्यकर्म— स्वयं देव-पूजा, स्नान के मन्त्र, कितना कुछ! काप्तेन एक बड़ा कर्मी है, पूजा, जप, आरती, स्तव— ये सब नित्यकर्म करता है।

(काप्तेन और पाण्डित्य— काप्तेन और ठाकुर की अवस्था)

''मैं काप्तेन को डाँटने लगा; कहा, तुम पढ़कर ही सब खराब कर रहे हो। और मत पढ़ो!

''मेरी अवस्था पर काप्तेन बोला, उड्डीयमान भाव। जीवात्मा और परमात्मा; जीवात्मा जैसे एक पक्षी है, और परमात्मा जैसे आकाश— चिदाकाश! काप्तेन ने कहा, 'तुम्हारा जीवात्मा चिदाकाश में उड़ जाता है— तभी समाधि।' *(सहास्य)* काप्तेन ने बंगालियों की निन्दा की। कहा, बंगाली लोग निर्बोध हैं! निकट ही माणिक रहता है, पहचान नहीं!''

(गृहस्थ भक्त और ठाकुर श्रीरामकृष्ण— कर्म कितने दिन)

''काप्तेन का बाप खूब बड़ा भक्त था। अंग्रेज़ों की फौज में सूबेदार का काम किया करता था। युद्धक्षेत्र में पूजा के समय पूजा करता— एक हाथ में शिव-पूजा, एक हाथ में तलवार-बन्दूक!

(मास्टर के प्रति)— ''किन्तु फिर भी जानते हो क्या है? रात-दिन विषय-

कर्म!— जब भी जाता, देखता— स्त्री, बाल-बच्चों में घिरा रहता है! और फिर लोगों के हिसाब का खाता (कापी) भी बीच-बीच में लाता है, कभी एक-एक बार ईश्वर में भी मन जाता है। जैसे प्रलाप (विकार) का रोगी; प्रलाप (विकार) का रोग लगा ही रहता है, कभी-कभी बेहोशी (चट्का) टूटती है! तब 'पानी पिऊँगा-पानी पिऊँगा' कह कर चिल्ला उठता है; और फिर जल देते ही बेहोश हो जाता है— कुछ भी होश नहीं रहती। मैंने इसीलिए तो उससे कहा, तुम कर्मी हो। काप्तेन बोला, 'जी, मुझे पूजा आदि करने में आनन्द होता है— जीव का कर्म के अतिरिक्त और उपाय नहीं है'।

"मैंने कहा था, किन्तु कर्म क्या सर्वदा करना होगा? मधुमक्खी भन्-भन् कब तक करती है— जब तक फूल पर नहीं बैठती। मधु-पान के समय भनभनानी चली जाती है। काप्तेन ने कहा, 'आपकी भाँति हम क्या पूजा और कर्म त्याग सकते हैं?' किन्तु उसकी बातों का निश्चय नहीं है। कभी कहता है, 'ये सब झूठ है', कभी कहता है, 'यह सब चैतन्य।' मैं कहता हूँ, जड़ फिर क्या है? सब ही चैतन्य!"

(पूर्ण और मास्टर— जबरदस्ती करके विवाह और श्रीरामकृष्ण)

पूर्ण की बात ठाकुर मास्टर से पूछते हैं।

श्रीरामकृष्ण— पूर्ण को एक बार और देख लेने पर मेरी व्याकुलता कुछ कम हो जाएगी! कैसा चतुर है! मेरे ऊपर बहुत आकर्षण है। वह कहता है— मेरी छाती भी कैसे-कैसे करती है आपको देखने के लिए।

(मास्टर के प्रति)— तुम्हारे स्कूल से उसको हटा लिया है, उससे तुम्हारी क्या कुछ क्षति होगी?

मास्टर— यदि वे (विद्यासागर) कहें कि तुम्हारे कारण ही उसको स्कूल से उठा लिया है, तो फिर मेरे पास जवाब देने का पथ है।

श्रीरामकृष्ण— क्या कहोगे?

मास्टर— बस, यही कहूँगा, साधु-संग से ईश्वर-चिन्तन होता है, वह तो फिर बुरा काम नहीं है। और आप लोगों ने जो पुस्तक पढ़ाने के लिए दी हुई है,

उसमें ही है— ईश्वर को प्राणों के साथ प्यार करोगे।

ठाकुर हँसते हैं।

श्रीरामकृष्ण— काप्तेन के घर में छोटे नरेन को बुला लिया था। कहा, तेरा घर कहाँ है? चल चलें— वह बोला, 'आइए'। किन्तु भय के साथ चलने लगा— पीछे बाप को पता लगा तो! *(सब का हास्य)*।

(अखिलबाबू के पड़ोसी से)— ''हाँ जी, तुम बहुत दिनों से नहीं आए? सात-आठ मास हो गए होंगे!''

पड़ोसी— जी, एक वर्ष हो गया होगा।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारे साथ और भी एक बाबू आया करते थे।

पड़ोसी— जी हाँ, नीलमणिबाबू।

श्रीरामकृष्ण— वे क्यों नहीं आते?— एक बार उन्हें आने के लिए कहो, उनके साथ मिलवा दिओ! *(पड़ोसी के संगी बालक को देखकर)* यह लड़का कौन है?

पड़ोसी— इस लड़के का घर आसाम में है।

श्रीरामकृष्ण— आसाम कहाँ है? किस ओर?

द्विज आशु की बात कह रहे हैं। आशु के बाप उसका विवाह करेंगे। आशु की इच्छा नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— देखो, देखो, उसकी इच्छा नहीं है। जबरदस्ती विवाह कर रहा है।

ठाकुर एक भक्त को ज्येष्ठ भाई की भक्ति करने को कहते हैं— ''ज्येष्ठ भाई, पिता सम, खूब मानोगे।''

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण और श्रीराधिका-तत्त्व— जन्म-मृत्यु-तत्त्व)

पण्डित जी बैठे हैं, उत्तर-पश्चिम प्रदेश के व्यक्ति हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य, मास्टर के प्रति)*— भागवत के बड़े पण्डित हैं।

मास्टर और भक्तगण पण्डित जी को एक दृष्टि से देखते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(पण्डित के प्रति)*— अच्छा जी! योगमाया क्या है?

पण्डित जी ने योगमाया की एक प्रकार से व्याख्या की।

श्रीरामकृष्ण— राधिका को क्यों योगमाया नहीं कहते?

पण्डित जी ने इस प्रश्न का उत्तर एक प्रकार से दिया। तब ठाकुर स्वयं ही कहते हैं, राधिका विशुद्ध सत्त्व प्रेममयी! योगमाया के भीतर तीनों गुण ही हैं— सत्त्व, रज, तम। श्रीमती के भीतर विशुद्ध सत्त्व के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। *(मास्टर के प्रति)* नरेन्द्र अब श्रीमती को खूब मानता है, वह कहता है, सच्चिदानन्द को यदि प्यार करना सीखना हो तो श्रीमती के पास से सीखा जाए।

''सच्चिदानन्द ने स्वयं रसास्वादन करने के लिए राधिका की सृष्टि की है। सच्चिदानन्द कृष्ण के अंग से राधा निकली हैं। सच्चिदानन्द कृष्ण ही 'आधार' और निज ही श्रीमती रूप में 'आधेय' हैं— अपना रस आस्वादन करने के लिए— अर्थात् सच्चिदानन्द को प्यार करके आनन्द-सम्भोग करने के लिए।

''वही वैष्णवों के ग्रन्थ में है, राधा ने जन्म ग्रहण करके आँखें नहीं खोलीं अर्थात् यह भाव कि इन आँखों से और किसको देखेगी! राधिका को देखने यशोदा जब कृष्ण को गोद में लेकर गई, तब कृष्ण को देखने के लिए राधा ने आँखें खोलीं। कृष्ण ने खेल के बहाने राधा की आँखों पर हाथ लगाया था। *(आसामी बालक के प्रति)* क्या तुमने देखा है, छोटा बच्चा आँखों पर हाथ लगाता है?''

(संसारी व्यक्ति और शुद्धात्मा लड़कों का प्रभेद)

पण्डित जी ठाकुर से विदा लेते हैं।

पण्डित जी— मैं घर जा रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण *(सस्नेह)*— कुछ हाथ में हुआ?

पण्डित जी— बाजार बड़ा मंदा है। रोजगार नहीं है।

पण्डित जी ने कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर को प्रणाम करके विदा ली।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— देखो, विषयी लोगों और इन छोकरों में कितना अन्तर है! यह पण्डित रात-दिन रुपया-रुपया करता है! कलकत्ता आया है, पेट के लिए। वह न हो तो घर वालों के पेट का नहीं चलता। इसीलिए इस-उसके द्वार पर जाना पड़ता है। मन एकाग्र करके ईश्वर-चिन्तन कब करेगा! किन्तु लड़कों के भीतर कामिनी-काञ्चन नहीं है। इच्छा करने से ही ईश्वर में मन दे सकते हैं।

''छोकरे विषयी के संग प्यार नहीं करेंगे। राखाल कभी-कभी कहता था, विषयी व्यक्ति को आते देखकर भय लगता है।

''मेरी जब प्रथम ऐसी अवस्था हुई थी, तब विषयी व्यक्ति को आते देखकर कमरे का दरवाजा बन्द कर लेता था।''

(पुत्र-कन्या-वियोग के लिए शोक और श्रीरामकृष्ण— पूर्वकथा)

''देश में श्री राममल्लिक को इतना प्यार किया करता था, किन्तु यहाँ पर जब वह आया तो छू तक भी नहीं सका।

श्री राम (मल्लिक) के साथ बचपन में खूब प्रीति थी। रात-दिन एक साथ रहता था। एक साथ सोता था। तब सोलह-सत्रह वर्ष की आयु थी। लोग कहते, इनमें से एक लड़की होता तो दोनों का विवाह हो जाता। उनके घर में दोनों जन खेला करते थे, तब की सब बातें याद आ रही हैं। उनके रिश्तेदार पालकी में चढ़कर आते, कहार लोग (उठाने वाले) 'हिंजोड़ा-हिंजोड़ा' कहते रहते थे।

''श्री राम को देखने के लिए कितनी बार आदमी भेजे हैं, अब चानके में दुकान की है। उस दिन आया था, दो दिन यहाँ पर था।

''श्री राम ने कहा, लड़का-बच्चा नहीं हुआ। भतीजे को पाला था, वह भी मर गया। कहते-कहते श्री राम ने दीर्घ निश्वास छोड़ी, आँखों में जल आ गया, भतीजे के लिए खूब शोक हुआ है।

''और फिर बताया कि बच्चा नहीं होने के कारण स्त्री का सारा स्नेह उसी भतीजे के ऊपर पड़ा था; अब वह शोक में अधीर हो गई है। मैं उससे कहता हूँ, 'पगली! शोक करने से फिर क्या होगा? तू काशी जाएगी'?

'' 'पगली' (क्षेपी) कहते ही वह एकदम डाइल्यूट (dilute) हो गया (गल गया)! उसको छू नहीं सका। देख लिया उसमें और कुछ नहीं है।''

ठाकुर शोक-सम्बन्ध में ये सब बातें बता रहे हैं। इधर कमरे के उत्तर के दरवाजे के निकट वे ही शोकातुरा ब्राह्मणी खड़ी हुई हैं। ब्राह्मणी विधवा है। उसकी एकमात्र कन्या का बहुत बड़े घर में विवाह हुआ था। लड़की का पति राधा उपाधिकारी, कलकत्ता निवासी, जमींदार था। लड़की जब बाप के घर आती थी, तब संग में सिपाही-संतरी आते, माँ की छाती जैसे दस हाथ हो आती। वही एकमात्र कन्या कई दिन हुए इस लोक को त्याग कर चली गई है।

ब्राह्मणी ने खड़े होकर भतीजे के लिए वियोग-जन्य श्री राममल्लिक के शोक की बात सुनी। वे कई दिन से बागबाजार से पागलवत् दौड़ी-दौड़ी ठाकुर श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने आ रही हैं, यदि कोई उपाय हो जाए; यदि वे इस दुर्जय शोक निवारण की कोई व्यवस्था कर सकें! ठाकुर फिर और बातें करते हैं—

श्रीरामकृष्ण *(ब्राह्मणी और भक्तों के प्रति)*— एक व्यक्ति आया था। ज़रा-सी देर बैठकर कहने लगा, 'जाऊँ, एक बार बेटे का चाँद मुखड़ा देखूँ'।

''मैं और रह नहीं सका। बोला, अरे साले! तब क्यों नहीं उठ जाता यहाँ से?— ईश्वर के चाँद मुख की अपेक्षा बेटे का चाँदमुख!''

(जन्म-मृत्यु-तत्त्व— जादूगर का जादू)

(मास्टर के प्रति)— ''बात क्या है, जानते हो ? ईश्वर ही सत्य है और सब अनित्य! जीव, जगत, मकान, घर-द्वार, बाल-बच्चे— ये सब जादूगर का जादू है! जादूगर लकड़ी से ढोल बजाता है और कहता है, देख जादू मेरा, यह देख जादू! ढक्कन खोलते ही, कितने ही पक्षी आकाश में उड़ गए! किन्तु बाजीगर ही सत्य है और सब अनित्य! अभी हैं, अभी नहीं!

''कैलाश में शिव बैठे हैं, नन्दी निकट हैं। तब एक बड़े जोर का शब्द हुआ। नन्दी ने पूछा, महाराज! यह किसका शब्द हुआ ? शिव ने बताया, 'रावण ने जन्म ग्रहण किया है, जभी यह शब्द हुआ है।' थोड़ी देर बार फिर और एक भयानक शब्द हुआ! नन्दी ने पूछा, 'अब किसका शब्द है ?' शिव ने हँसकर कहा, 'अब रावण-वध हो गया!' जन्म-मृत्यु— यह समस्त जादू के जैसा है! अभी है, अभी नहीं! ईश्वर सत्य और सब अनित्य। जल ही सत्य है, जल के बुलबुले— अभी हैं, अभी नहीं; बुलबुले जल में मिल जाते हैं— जिस जल में से उत्पत्ति, उसी जल में लय।

''ईश्वर जैसे महासमुद्र हैं, जीवगण जैसे बुलबुले; उनमें ही जन्म, उनमें ही लय।

''लड़के, लड़की— जैसे एक बड़े बुलबुले के संग 5-6 छोटे बुलबुले।

''ईश्वर ही सत्य हैं। उनके ऊपर किस प्रकार भक्ति हो, उनको किस प्रकार से प्राप्त किया जाए— अब यही चेष्टा करना। शोक करने से क्या होगा ?''

सब चुप हैं। ब्राह्मणी बोली, 'तो फिर मैं जाती हूँ।'

श्रीरामकृष्ण *(ब्राह्मणी के प्रति सस्नेह)*— तुम अब जाओगी ? बड़ी धूप है! क्यों, इनके संग में गाड़ी में चली जाना।

आज ज्येष्ठ मास की संक्रान्ति, समय प्राय: तीन-चार का। बड़ी गर्मी है। एक भक्त ने ठाकुर को एक नया चन्दन का पंखा लाकर दिया। ठाकुर पंखा लेकर आनन्दित हुए और बोले, ''वाह! वाह! ॐ तत् सत्! काली!''

यह कहकर प्रथम ही देवताओं को हवा कर रहे हैं। उसके पश्चात् मास्टर से कह रहे हैं, ''देखो, देखो, कैसी हवा!'' मास्टर भी आनन्दित होकर देख रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(पक्का-मैं या दास-मैं)

काप्तेन लड़कों को साथ लेकर आए हैं।

ठाकुर ने किशोरी से कहा, ''इन्हें सब दिखा लाओ तो— ठाकुर-मन्दिर!''

ठाकुर काप्तेन के साथ बातें करते हैं।

मास्टर, द्विज इत्यादि भक्तगण फर्श पर बैठे हैं। दमदमा के मास्टर भी आए हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण छोटी खाट पर उत्तरास्य बैठे हुए हैं,उन्होंने काप्तेन को छोटी खाट के एक ओर अपने सम्मुख बैठने के लिए कहा।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारी बात इन्हें बताई थी— कितनी भक्ति, कितनी पूजा, कितनी प्रकार की आरती!

काप्तेन *(सलज्ज भावे)*— मैं क्या पूजा, आरती करूँगा! मैं क्या हूँ!

श्रीरामकृष्ण— जो 'मैं' कामिनी-काञ्चन में आसक्त है, उसी 'मैं' में ही दोष है। मैं ईश्वर का दास, इस 'मैं' में दोष नहीं। और बालक का मैं— बालक किसी भी गुण के वश नहीं। अभी झगड़ा कर रहा है और फिर प्रीति! अभी घरौंदा बनाया कितने यत्न से, और फिर झट से तोड़ डाला! दास-मैं— बालक का मैं, इसमें कोई भी दोष नहीं। यह 'मैं' मैं के मध्य नहीं है, जैसे मिश्री मिठाइयों के मध्य में नहीं है। और मिठाई से असुख होता है, किन्तु मिश्री से वरन् अम्लनाश होता है। और जैसे 'ऊँकार' शब्दों के मध्य में नहीं है।

''इसी अहं के द्वारा सच्चिदानन्द को प्यार किया जाता है। अहं तो जाएगा नहीं— जभी 'दास-मैं', 'भक्त-मैं'। वैसा न हो तो मनुष्य क्या लेकर रहे? गोपियों का कैसा प्यार! *(काप्तेन के प्रति)* तुम गोपियों की कुछ बातें

बताओ। तुम इतना भागवत पढ़ते हो!''

काप्तेन— जब श्रीकृष्ण वृन्दावन में थे, कोई भी ऐश्वर्य नहीं था, तब भी गोपियों ने उनको प्राणों से अधिक प्यार किया था। जभी कृष्ण ने कहा था, मैं उनका ऋण कैसे शोध करूँगा? जिन गोपियों ने मेरे प्रति सब समर्पण किया हुआ है— देह, मन, चित्त।

श्रीरामकृष्ण भाव में विभोर हो रहे हैं। 'गोविन्द! गोविन्द! गोविन्द!'! यह शब्द बोलते-बोलते भावाविष्ट हो रहे हैं! और प्राय: बाह्यशून्य। काप्तेन सविस्मय कह रहे हैं, ''धन्य! धन्य!''

काप्तेन और समवेत सब भक्तगण ठाकुर की ऐसी अद्‌भुत प्रेमावस्था देख रहे हैं। जब तक वे प्रकृतिस्थ हुए, तब तक वे लोग चुपचाप एकटक देखते रहे।

श्रीरामकृष्ण— उसके उपरान्त?

काप्तेन— वे योगियों के अगम्य— 'योगिभिरगम्यम्'— आपकी न्यायीं योगियों के अगम्य, किन्तु गोपियों के गम्य! योगियों ने कितने ही वर्षों तक योग करके जिनको नहीं पाया, किन्तु गोपियों ने अनायास में उनको पा लिया।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— गोपियों के पास खाना, खेलना, रोना, प्यार से जिद्द करना— यह समस्त हुआ है।

(श्रीयुक्त बंकिम और श्रीकृष्ण-चरित्र— अवतारवाद)

कोई भक्त कहते हैं, श्रीयुक्त बंकिम ने 'कृष्ण-चरित्र' लिखा है।

श्रीरामकृष्ण— बंकिम श्रीकृष्ण को मानते हैं, श्रीमती को नहीं मानते।

काप्तेन— लगता है लीला नहीं मानते।

श्रीरामकृष्ण— और फिर कहता है कि काम आदि— ये सब आवश्यक हैं।

दमदम मास्टर— नवजीवन में बंकिम ने लिखा है— धर्म का यही प्रयोजन है कि इसमें शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि समस्त वृत्तियों की स्फूर्ति होती है।

काप्तेन— 'काम आदि प्रयोजनीय है', किन्तु लीला नहीं मानते। ईश्वर मनुष्य होकर वृन्दावन में आए थे, राधाकृष्ण-लीला— यह क्यों नहीं मानते?

(पूर्णब्रह्म का अवतार— केवल पाण्डित्य और प्रत्यक्ष का प्रभेद
Mere Booklearning and Realisation)

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ये सब बातें अखबार में तो नहीं हैं, कैसे फिर माना जाए!

"किसी ने अपने बन्धु से कहा, 'अरे भाई! कल उस मुहल्ले से जा रहा था, उस समय देखा, वह घर हुड़मुड़ करके गिर पड़ा।' बन्धु बोला, अरे ज़रा ठहरो भाई, एक बार अखबार देख लूँ। घर के हुड़मुड़ करके गिरने की बात अखबार में कुछ भी नहीं थी। तब वह बोला, 'कहाँ, अखबार में तो कुछ भी नहीं है!— वह सब काम की बात नहीं है।' उस व्यक्ति ने कहा, मैं जो देखकर आया हूँ। वह बोला, 'वैसा हो तो सकता है चाहे, किन्तु जब अखबार में नहीं है, तो फिर उस बात का विश्वास कैसे करूँ?' ईश्वर मनुष्य होकर लीला करते हैं— इस बात का कैसे विश्वास करूँ? यह बात उनकी अंग्रेज़ी पढ़ाई-लिखाई के भीतर है जो नहीं! पूर्ण अवतार को समझना बड़ा कठिन है, क्या कहते हो? 'चौदह पाव' (साढ़े तीन हाथ) के भीतर अनन्त का आना!"

काप्तेन— 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' कहते समय पूर्ण और अंश कहना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण— पूर्ण और अंश— जैसे अग्नि और उसका स्फुलिंग। अवतार भक्त के लिए है— ज्ञानी के लिए नहीं। अध्यात्म रामायण में है— हे राम! तुम्हीं व्याप्य हो, तुम्हीं व्यापक, 'वाच्यवाचकभेदेन त्वमेव परमेश्वर।'

काप्तेन— 'वाच्यवाचक' अर्थात् व्याप्य-व्यापक।

श्रीरामकृष्ण— 'व्यापक' अर्थात् जैसे छोटा-सा एक रूप, जैसे अवतार मनुष्य-रूप बने हैं।

चतुर्थ परिच्छेद

(अहंकार ही विनाश का कारण और ईश्वर-लाभ में विघ्न)

सब बैठे हैं। काप्तेन और भक्तों के साथ ठाकुर बातें कर रहे हैं। इस समय ब्राह्मसमाज के जयगोपाल सेन और त्रैलोक्य ने आकर प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। ठाकुर सहास्य त्रैलोक्य की ओर देखते हुए (ताकते हुए) बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— अहंकार है, इसी कारण ईश्वर-दर्शन नहीं होता। ईश्वर के घर के दरवाजे के सामने यही अहंकार रूप वृक्ष का तना (गुंड़ि) पड़ा हुआ है। इसी गुंड़ि का उल्लंघन बिना किए उनके घर में प्रवेश नहीं किया जाता।

''कोई भूत-सिद्ध हो गया था। सिद्ध हो जाने पर ज्योंहि पुकारा त्योंहि भूत आ गया। आकर बोला, 'क्या काम करना है, बताओ। यदि काम नहीं दे सकोगे तो तुरन्त तुम्हारी गर्दन तोड़ दूँगा।' उस व्यक्ति को जितना काम आवश्यक था, उसने सब धीरे-धीरे करवा लिया। तब फिर और काम नहीं मिला। उस भूत ने कहा, 'अब तुम्हारी गर्दन तोड़ूँ?' वह बोला, 'तनिक ठहरो, मैं अभी आता हूँ।' यह कहकर गुरुदेव के पास गया, बोला, 'महाशय! बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ। यह बात है, अब क्या करूँ?' गुरु ने तब कहा, तू एक काम कर, उसको यह एक बाल सीधा करने के लिए कह। भूत दिन-रात वही करने लगा। बाल क्या कभी सीधा होता है? जैसा टेढ़ा था, वैसा ही रहा! अहंकार भी अभी गया और फिर आ गया।

''अहंकार का त्याग न किया जाए तो ईश्वर की कृपा नहीं होती।

''उत्सव के घर में यदि किसी को भण्डारी बनाया जाता है तो जब तक वह भण्डार में रहता है तब तक मालिक नहीं आता। जब वह स्वयं अपनी इच्छा से भण्डार छोड़कर चला जाता है, तब ही मालिक कमरे में ताला लगाकर अपने-आप स्वयं भण्डार का बन्दोबस्त करता है।

''नाबालिग का ही वली (प्रबन्ध करने वाला) होता है। बालक अपने-आप अपनी सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर सकता, राजा भार लेते हैं।

अहंकार त्याग न किया जाए तो ईश्वर भार नहीं लेते।

''वैकुण्ठ में लक्ष्मीनारायण बैठे हैं, हठात् नारायण उठकर खड़े हो गए। लक्ष्मी पदसेवा कर रही थीं; बोलीं, 'ठाकुर, कहाँ जा रहे हैं?' नारायण बोले, 'मेरा एक भक्त बड़ी विपद में पड़ा है, तभी उसकी रक्षा करने जा रहा हूँ!' यह कहकर नारायण बाहर निकल पड़े। किन्तु तत्क्षण फिर लौट आए। लक्ष्मी बोली, भगवन्! इतनी शीघ्र लौट आए? नारायण ने हँसकर कहा, 'वह भक्त प्रेम में विह्वल होकर सड़क पर चल रहा था, धोबी कपड़े सुखा रहे थे, भक्त उन्हें पैरों तले रौंदता हुआ जा रहा था, यह देखकर धोबी लाठी लेकर उसे मारने आया था। तभी मैं उसकी रक्षा करने गया था।' लक्ष्मी ने फिर कहा, 'फिर वापिस क्यों आ गए?' नारायण हँसते-हँसते बोले, 'वह भक्त स्वयं ही धोबियों को मारने के लिए ईंट उठा रहा है, मैंने देख लिया। *(सब का हास्य)*। तभी फिर मैं नहीं गया।''

(पूर्वकथा— केशव और गौरी— सोऽहं अवस्था के पश्चात् दास-भाव)

''केशवसेन से कहा था, 'अहं का त्याग करना होगा'। उस पर केशव बोला— तब फिर तो महाशय, दल कैसे रहेगा?

''मैंने कहा, 'तुम्हारी यह कैसी बुद्धि!— तुम कच्चा 'मैं' त्याग करो— जो मैं कामिनी-काञ्चन में आसक्त करता है। किन्तु पक्का मैं, दास-मैं, भक्त का मैं— त्याग करने के लिए नहीं कहता। मैं ईश्वर का दास, मैं ईश्वर की सन्तान— इसका नाम है पक्का मैं। इसमें कोई दोष नहीं।''

त्रैलोक्य— अहंकार जाना बड़ा ही कठिन है। मनुष्य सोचता है, समझ गया हूँ।

श्रीरामकृष्ण— पीछे फिर कहीं अहंकार न हो जाए, गौरी 'मैं' नहीं कहता था— कहता 'ये'। मैं भी देखा-देखी कहता 'ये' (इनि); 'मैंने खाया है', न कहकर कहता, 'इन्होंने खा लिया है'। सेजोबाबू (मथुरबाबू) वह देखकर एक दिन बोले— यह क्या बाबा, तुम ऐसे क्यों कहते हो? वे लोग वैसे कहें,

उनका अहंकार है। तुम्हारा तो नहीं है। तुम्हें वैसे बोलने का प्रयोजन नहीं।

''केशव से कहा था, 'यह तो फिर जाएगा नहीं, अतएव वह दास-भाव में रहे— जैसे दास।' प्रह्लाद दोनों भावों में रहते थे, कभी-कभी बोध करते 'तुम ही मैं, मैं ही तुम'— 'सोऽहम्'। और फिर जब अहंबुद्धि आती, तब देखते— मैं दास, तुम प्रभु! एक बार 'सोऽहम्' हो जाने पर फिर तब दास-भाव में रहना— जैसे 'मैं' दास।''

(ब्रह्मज्ञान के लक्षण— भक्त का मैं— कर्मत्याग)

(काप्तेन के प्रति)— ब्रह्मज्ञान हो गया है, कुछ लक्षणों से समझ में आ जाता है। श्रीमद्भागवत में ज्ञानी की चार अवस्थाओं की बात है— (1) बालकवत्, (2) जड़वत्, (3) उन्मादवत् और (4) पिशाचवत्। पाँच वर्ष के बालक की अवस्था हो जाती है। और फिर कभी-कभी पागल की न्यायीं व्यवहार करता है।

''कभी जड़ की न्यायीं रहता है। इस अवस्था में कर्म नहीं कर सकता, कर्मत्याग हो जाता है। फिर भी यदि कहो कि जनक आदि ने कर्मत्याग किया था, वह बात यह है कि उस समय के लोग कर्मचारियों के ऊपर भार देकर निश्चिन्त हो जाते थे। और तब के लोग भी बड़े विश्वासी थे।''

श्रीरामकृष्ण कर्मत्याग की बात कर रहे हैं, और फिर जिन्हें कर्म में आसक्ति है, उनको अनासक्त होकर कर्म करने के लिए कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण— ज्ञान हो जाने पर अधिक कर्म नहीं कर सकता।

त्रैलोक्य— क्यों? पवहारी बाबा ऐसे योगी हैं किन्तु लोगों का झगड़ा-विवाद मिटा देते हैं— यहाँ तक कि मुकदमे का फैसला कर देते हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, हाँ, वैसा होता है। दुर्गाचरण डॉक्टर इतना शराबी, चौबीस घण्टे मद खाता रहता, किन्तु काम के समय ठीक रहता, चिकित्सा करने के समय किसी प्रकार की भूल नहीं होती। भक्ति-लाभ करके कर्म करने में दोष नहीं है। किन्तु बड़ा कठिन है, खूब तपस्या चाहिए।

''ईश्वर ही समस्त कर रहे हैं, हम लोग यन्त्र स्वरूप हैं! काली-मन्दिर के सामने सिखों ने कहा था, 'ईश्वर दयामय' हैं। मैंने कहा, दया किन के ऊपर? सिखों ने कहा, 'क्यों महाराज? हम सब पर'! मैंने कहा, हम सब उनके बच्चे हैं, और बच्चों के ऊपर फिर दया कैसी? वे बच्चों को देख रहे हैं। यदि वे नहीं देखेंगे तो क्या बामुनपाड़े के लोग आकर देखेंगे? अच्छा, जो 'दयामय' कहते हैं, वे लोग यह नहीं सोचते कि हम क्या पराये बच्चे हैं?''

काप्तेन— जी हाँ! कारण, ईश्वर अपने हैं— यह बोध नहीं रहता।

(भक्त और पूजादि— ईश्वर भक्तवत्सल— पूर्णज्ञानी)

श्रीरामकृष्ण— तो क्या फिर दयामय नहीं कहेगा? जब तक साधना की अवस्था है तब तक कहेगा। उन्हें पा लेने पर तब फिर ठीक (बिलकुल) 'अपने बाप' या 'अपनी माँ' ही बोध हो जाता है। जब तक ईश्वर-लाभ नहीं होता तब तक बोध रहता है— हम सब दूर के व्यक्ति हैं, अन्य के बेटे।

''साधना-अवस्था में उनको सब ही कहना चाहिए। हाजरा ने एक दिन नरेन्द्र से कहा था, 'ईश्वर अनन्त, उनका ऐश्वर्य अनन्त। वे क्या फिर सन्देश, केला खाएँगे? या गाना सुनेंगे? यह समस्त मन की भूल है'।

''नरेन्द्र तुरन्त दस हाथ नीचे उतर गया। तब मैंने हाजरा से कहा, तुम कैसे पाजी हो! उनसे ऐसी बातें कहने पर वे कहाँ खड़े होंगे? भक्ति चली जाए तो मनुष्य क्या लेकर रहे? उनका अनन्त ऐश्वर्य है, तो भी वे हैं भक्ताधीन! बड़े आदमी का दरबान आकर बाबू की सभा में एक ओर खड़ा है। हाथ में कुछ वस्तु है, कपड़े से ढकी हुई! अति संकोच भाव में है। बाबू ने पूछा, क्या बात है दरबान, हाथ में क्या है? दरबान ने अति संकोच से एक शरीफा निकालकर बाबू के सम्मुख रखा— इच्छा है, बाबू इसे खाएँ। बाबू ने दरबान का भक्ति-भाव देखकर शरीफे को बड़े आदर से लिया और कहा, 'आहा! बढ़िया शरीफा है। तुम इसे कहाँ से कष्ट करके लाए?'

''वे हैं भक्ताधीन! दुर्योधन ने बहुत प्यार-आदर दिखाया और कहा, यहाँ पर खाएँ— रहें। ठाकुर (श्रीकृष्ण) किन्तु विदुर की कुटीर में गए। वे

हैं भक्तवत्सल, विदुर का शाक-पात सुधा की न्यायीं खाया!

''पूर्णज्ञानी का एक लक्षण और है— पिशाचवत्! खाने-पीने का विचार नहीं— शुचि-अशुचि का विचार नहीं! पूर्णज्ञानी और पूर्ण मूर्ख, दोनों के ही बाहर के लक्षण एक प्रकार के होते हैं। पूर्णज्ञानी ने शायद गंगास्नान, मन्त्र-पाठ नहीं किया, ठाकुर-पूजा करते समय फूल आदि शायद एक संग सारे के सारे भगवान के चरणों में देकर चला आया— कोई भी तन्त्र-मन्त्र नहीं।''

(कर्मी और ठाकुर श्रीरामकृष्ण— कर्म कब तक ?)

''जितने दिन संसार में भोग करने की इच्छा रहती है, उतने दिन कर्मत्याग नहीं कर सकता। जब तक भोग की आशा, तब तक कर्म।

''एक पक्षी जहाज के मस्तूल पर अन्यमनस्क हुआ बैठा था। जहाज गंगा के भीतर था, धीरे-धीरे महासमुद्र में आ गया। तब पक्षी को होश आया, उसने चारों ओर देखा— कूल-किनारा नहीं। तब किनारे पर जाने के लिए उत्तर की ओर उड़ गया। बहुत दूर जाकर शान्त हो गया, किन्तु कूल-किनारा नहीं दिखाई दिया। तब फिर क्या करता, लौटकर आकर फिर मस्तूल पर बैठ गया।

''थोड़ी देर पश्चात् वह पक्षी फिर दोबारा उड़ गया। अब की बार पूर्व दिशा में गया। उस ओर भी कुछ नहीं देख पाया, चारों दिशाओं में केवल अकूल पाथार (विशाल जलराशि)! तब बड़ा ही परिश्रान्त होकर फिर दोबारा लौटकर जहाज के मस्तूल के ऊपर बैठ गया। अनेक क्षण विश्राम करके एक बार दक्षिण की ओर गया, इसी प्रकार फिर पश्चिम की ओर गया। जब देख लिया कहीं भी कूल-किनारा नहीं है, तब उसी मस्तूल के ऊपर बैठ गया और फिर उठा नहीं। निश्चेष्ट होकर बैठा रहा। तब मन में और कोई भी व्यस्त भाव (चञ्चलता, जल्दबाजी, उतावलापन) और अशान्ति नहीं। निश्चिन्त हो गया और कोई चेष्टा भी नहीं रही।''

काप्तेन— आहा, क्या दृष्टान्त है!

(भोगान्त होने पर व्याकुलता और ईश्वर-लाभ)

श्रीरामकृष्ण— संसारी लोग जब सुख के लिए चारों ओर घूमते-घूमते फिर अन्त में परिश्रान्त हो जाते हैं— जब कामिनी-काञ्चन में आसक्त होकर केवल दु:ख पाते हैं, तब वैराग्य आता है, त्याग आता है। भोग किए बिना बहुतों का त्याग नहीं होता। कुटीचक और बहूदक। साधकों के भीतर कोई-कोई बहुत से तीर्थों पर घूमते हैं। एक जगह पर स्थिर होकर बैठ नहीं सकते; अनेक तीर्थों का उदक अर्थात् जल पीते हैं। जब फिर-फिर कर क्षोभ मिट जाता है, तब एक जगह कुटी बनाकर बैठता है। फिर निश्चिन्त और चेष्टाशून्य होकर भगवान का चिन्तन करता है।

''किन्तु संसार में क्या भोग करेगा? कामिनी-काञ्चन भोग? उस में तो क्षणिक आनन्द है! अभी है, अभी नहीं।

''प्राय: मेघ और वर्षा लगी हुई है, सूर्य दिखाई नहीं देता! दु:ख का भाग ही है अधिक। और कामिनी-काञ्चन रूप मेघ सूर्य को देखने नहीं देते।

''कोई-कोई मुझ से पूछता है, महाराज, ईश्वर ने क्यों ऐसा संसार बनाया है? हमारे लिए क्या कोई उपाय नहीं है?

(उपाय—व्याकुलता— त्याग)

''मैं कहता हूँ, उपाय क्यों नहीं होगा? उनके शरणागत होओ, और व्याकुल होकर प्रार्थना करो, जिससे अनुकूल हवा बहे— जिससे शुभ योग घटे। व्याकुल होकर पुकारने से वे सुनेंगे ही सुनेंगे।

''किसी के लड़के का जाय-जाय हो रहा था। वह व्यक्ति व्याकुल होकर इसके पास, उसके पास उपाय पूछता फिर रहा था। किसी ने कहा, तुम यदि यह एक जुगाड़ कर सको तो अच्छा हो— स्वाति-नक्षत्र का जल खोपड़ी के ऊपर पड़े। उस जल को एक मेंढक पीने जाए। उस मेंढक पर एक साँप पीछा करके धावा करे। मेंढक को डंक मारते समय साँप का विष उस खोपड़ी में पड़े और वह मेंढक भाग जाए। वही विषजल ज़रा-सा लेकर रोगी को खिलाना होगा।

''वह व्यक्ति इतना व्याकुल होकर उसी औषध की खोज में स्वाति-नक्षत्र में निकल पड़ा। उसी समय वर्षा हो रही थी। तब व्याकुल होकर ईश्वर से कहता है, ठाकुर! अब खोपड़ी मिला दो। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते देखा, एक खोपड़ी खुली है, उसमें स्वाति-नक्षत्र का जल पड़ रहा है। तब वह फिर और प्रार्थना करके कहने लगा, दुहाई ठाकुर! अब ये कुछ और भी मिला दो— मेंढक और साँप। उसकी ऐसी व्याकुलता कि झटपट सब कुछ मिल गया। देखते ही देखते एक साँप मेंढक का पीछा करता हुआ आ रहा है, और काटने लगते ही उसका विष उसी खोपड़ी के भीतर पड़ गया।

''ईश्वर के शरणागत होकर, उनको व्याकुल होकर पुकारने पर वे सुनेंगे ही सुनेंगे— सब सुयोग कर देंगे।''

काप्तेन— क्या दृष्टान्त है!

श्रीरामकृष्ण— हाँ, सब सुयोग कर देते हैं। हो सकता है— विवाह नहीं हुआ, सम्पूर्ण मन ईश्वर को दे सका। शायद भाई रोजगार करने लग गए अथवा एक लड़का बड़ा हो गया, वैसा होने पर फिर तुम्हें गृहस्थी नहीं देखनी पड़ी। तब तुम अनायास ही सोलह आना मन ईश्वर में दे सकते हो। किन्तु कामिनी-काञ्चन-त्याग बिना हुए नहीं होगा। त्याग हो जाने पर ही फिर अज्ञान, अविद्या नष्ट होते हैं। आतशी (शीशे) के ऊपर सूर्य की किरणें पड़ने पर कितनी वस्तुएँ जल जाती हैं। किन्तु घर के भीतर छाया होती है, वहाँ पर आतशी काँच ले जाने पर वैसा नहीं होता। घर त्याग करके बाहर आकर खड़े होना होता है।''

(ईश्वर-लाभ के उपरान्त संसार— जनक आदि का)

''किन्तु ज्ञान-प्राप्ति के बाद कोई-कोई संसार में रहते हैं। वे घर-बार दोनों ही देख पाते हैं। ज्ञान का आलोक गृहस्थ के भीतर पड़ता है, तभी वे भला-मन्दा, नित्य-अनित्य— ये सब उस आलोक में देख लेते हैं।

''जो अज्ञानी हैं, ईश्वर को नहीं मानते, और संसार में हैं, वे जैसे मिट्टी के घर के भीतर रह रहे हैं। क्षीण आलोक में केवल घर के भीतर का ही देख

पाते हैं। किन्तु जिन्होंने ज्ञान-लाभ कर लिया है, ईश्वर को जानते हैं, उसके बाद गृहस्थ में हैं, वे मानो शीशे के (द्वारों वाले) घर के भीतर वास करते हैं। घर के भीतर का भी देख पाते हैं, घर के बाहर की वस्तु भी देख लेते हैं। ज्ञान-सूर्य का आलोक घर के भीतर खूब प्रवेश करता है। वह व्यक्ति घर के भीतर की चीज़ें खूब स्पष्ट रूप से देख लेता है— कौन-सी भली, कौन-सी मन्दी; कौन-सी नित्य, कौन-सी अनित्य।

''ईश्वर ही कर्त्ता हैं और सब हैं उनके यन्त्र स्वरूप।

''जभी तो ज्ञानी भी अहंकार नहीं रखता। 'महिम्नस्तव' जिसने लिखा था, उसको अहंकार हो गया था। शिव के साँड ने दाँत बाहर निकाल कर दिखाए, तब उसका अहंकार चूर्ण हो गया। देख लिया, एक-एक दाँत ही एक-एक मन्त्र है! उसका अर्थ क्या है, जानते हो? — ये सब मन्त्र अनादि काल से थे। तुमने केवल उद्धार किया है।

''गुरुगिरि करना अच्छा नहीं। ईश्वर का आदेश बिना पाए आचार्य नहीं हुआ जाता। जो स्वयं कहता है, 'मैं गुरु' वह हीनबुद्धि है। तराजू के पलड़े देखे नहीं?— हल्की दिशा ऊँची होती है। जो व्यक्ति स्वयं ऊँचा हो जाता है, वह हल्का है। सब ही गुरु बनना चाहते हैं!— शिष्य मिलता नहीं।''

त्रैलोक्य छोटी खाट के उत्तरी किनारे पर फर्श पर बैठे हैं। त्रैलोक्य गाना गाएँगे। ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ''आहा! तुम्हारा कैसा गान! त्रैलोक्य तानपूरा लेकर गाना गाते हैं—

तुझसे हमने दिल को लगाया, जो कुछ है सो तूँ ही है॥

गाना— तुमि सर्वस्व आमार (हे नाथ) प्राणाधार सारात्सार।
नाहि तोया बिने केहो त्रिभुवने आपनार बोलिबार॥

[हे नाथ! प्राणाधार! सारात्सार! तुम मेरे सर्वस्व हो। तुम्हारे बिना त्रिभुवन में मेरा अपना कहने के लिए कोई नहीं है।]

गाना सुनकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण भाव में विभोर हो रहे हैं और कह रहे हैं, ''आहा! तुम ही सब! आहा! आहा!''

गान समाप्त हो गया। छ: बज गए हैं। ठाकुर मुख धोने झाऊतले की ओर जा रहे हैं। संग में मास्टर हैं।

ठाकुर हँसते-हँसते बातें करते जा रहे हैं। मास्टर से हठात् बोले, ''कहाँ, तुम लोगों ने तो खाया नहीं? और उन्होंने भी नहीं खाया?''

ठाकुर भक्तों को प्रसाद देने के लिए उतावले (व्यस्त, व्यग्र) हो गए हैं।

(नरेन्द्र और ठाकुर श्रीरामकृष्ण)

आज सन्ध्या होने पर ठाकुर की कलकत्ता जाने की बात है। झाऊतला से लौटते समय मास्टर से कहते हैं— ''तो किसकी गाड़ी में जाऊँ?''

सन्ध्या हो गई है। ठाकुर के कमरे में प्रदीप जला दिया गया और धूना दे दिया है। ठाकुर-मन्दिर में सब स्थानों पर फराश (बत्ती आदि करने वाला सेवक) ने रोशनी कर दी है! रोशनचौकी बज रही है। अब बारह शिव-मन्दिर, विष्णु-मन्दिर और काली-मन्दिर में आरती होगी।

छोटी खाट पर बैठकर देवताओं के नाम के कीर्त्तन के बाद ठाकुर श्रीरामकृष्ण माँ का ध्यान कर रहे हैं। आरती हो गई। कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर कमरे में इस ओर से उस ओर पायचारी कर रहे हैं (टहल रहे हैं) और भक्तों के संग बीच-बीच में बातें करते हैं और कलकत्ता जाने के लिए मास्टर से परामर्श कर रहे हैं।

इस समय नरेन्द्र आ उपस्थित हुए। साथ में शरत् तथा और भी दो-एक लड़के हैं। उन्होंने आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया।

नरेन्द्र को देखकर ठाकुर का स्नेह उथला पड़ रहा है। जैसे छोटे बच्चे को प्यार करते हैं, ठाकुर नरेन्द्र के मुख पर हाथ देकर आदर-प्यार करने लगे और स्नेहपूर्ण स्वर में बोले, ''तुम आए हो''!

कमरे के बीच पश्चिमास्य हुए ठाकुर खड़े हुए हैं। नरेन्द्र और कुछ लड़के ठाकुर को प्रणाम करके पूर्वास्य हुए उनके सम्मुख बातें करते हैं। ठाकुर मास्टर की ओर मुँह फेरकर कह रहे हैं— ''नरेन्द्र आया है, फिर जाया जाए! एक व्यक्ति को नरेन्द्रहर को बुलाने भेजा था; अब फिर जाया जाए! क्या कहते हो?''

मास्टर— जो आज्ञा, आज फिर रहने दें।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, कल जाऊँगा— चाहे नौका से, नहीं तो गाड़ी से। *(अन्य भक्तों के प्रति)* तो फिर तुम लोग आज चलो, रात हो गई है।

भक्तों ने सबने अकेले-अकेले प्रणाम करके विदा ग्रहण की।